|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 16: दैवासुरसंपद्विभागयोग

1/2 (श्लोक 1-12), रविवार, 09 अप्रैल 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/ka1KF9vrb2g

दैवीय एवं आसुरी गुण सम्पदाएँ

सुन्दर दीप-प्रज्वलन के द्वारा ईश-वंदना के पश्चात् ईश्वर से मिलाने वाले गुरु की वन्दना के साथ आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ हुआ। श्रीभगवान ने 'दैवासुरसंपद्विभागयोग' नामक इस सोलहवें अध्याय में दैवी और आसुर संपदा का वर्णन किया है। जब हम कुछ वर्णन करते हैं तो वे सब बातें कहने से हमारे अन्तःकरण में भी प्रवेश करती हैं। पुज्य गुरुदेव स्वामी गोविंददेव गिरि जी सदैव कहते हैं- **'गीता पढ़ें, पढ़ाएँ; जीवन में लाएँ।'** इसे जीवन में लाना कोई कठिन भी नहीं है। जब हम श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ करते हैं तो वे शब्द आभ्यन्तर हमारा मार्गदर्शन करते हैं। इस अध्याय में श्रीभगवान ने प्रथम तीन श्लोकों में 26 दैवी गुण-संपदाओं का वर्णन किया है। ये गुण-सम्पदाएँ सूर्य के उदय के साथ होने वाले प्रकाश के समान आभावान हैं। इनके लिये श्रीकृष्ण शरणागति और थोड़ा-सा प्रयास जरूरी है।

16.1, 16.2, 16.3

श्रीभगवानुवाच
अभयं(म्) सत्त्वसंशुद्धिः(र्), ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं(न्) दमश्च यज्ञश्च, स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।16.1।।
अहिंसा सत्यमक्रोध:(स्), त्यागः(श्) शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं(म्), मार्दवं(म्) ह्रीरचापलम्।।16.2।।
तेजः क्षमा धृतिः(श्) शौचम्, अद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातस्य भारत।।16.3।।

श्रीभगवान बोले – भय का सर्वथा अभाव; अन्तःकरण की अत्यंत शुद्धि; ज्ञान के लिये योग में दृढ़ स्थिति; सात्त्विक दान; इन्द्रियों का दमन; यज्ञ; स्वाध्याय; कर्तव्य-पालन के लिये कष्ट सहना और शरीर-मन-वाणी की सरलता।
अहिंसा, सत्य भाषण, क्रोध न करना, संसार की कामना का त्याग, अन्तःकरण में राग-द्वेष जनित हलचल का न होना, चुगली न करना, प्राणियों पर दया करना, सांसारिक विषयों में न ललचाना, अन्तःकरण की कोमलता, अकर्तव्य करने में लज्जा, चपलता का अभाव।
तेज (प्रभाव), क्षमा, धैर्य, शरीर की शुद्धि, वैर भाव का न होना (और) मान को न चाहना, हे भरतवंशी अर्जुन ! (ये सभी) दैवी

सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचनः बड़े सुंदर और समझने में आसान ये तीनों श्लोक हैं। इनमें से कई शब्द हम रोज बोलते हैं। अहिंसा के बारे में यहाँ बहुत अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है। महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता आंदोलन के समय अहिंसा को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया। अहिंसा का तात्पर्य केवल शरीर से किसी प्राणी की हिंसा नहीं करना ही नहीं है अपितु हमारे मन और पाँचों इंद्रियों में से किसी के द्वारा भी यदि किसी को कोई कष्ट पहुँचे तो वह भी हिंसा है। अहिंसा का तात्पर्य है- अंतर्बाह्य रूप से अहिंसक होना। हम अपनी किसी बात से भी किसी को कष्ट न पहुँचाए। जब हम बोलते हैं तो शब्दों से भी हिंसा हो सकती है। हमारे अंदर का संयम कई बार टूट जाता है। बेझिझक बोलने से हमारे शब्द रूपी आलपिन किसी के मन रूपी गुब्बारे को फोड़ सकती है। शस्त्रों के घाव तो भर जाते हैं, लेकिन शब्दों के घाव जो मन पर पड़ जाते हैं, वे नहीं भरते। कभी-कभी हमारी दृष्टि - निक्षेप से भी हिंसा हो जाती है। यहाँ श्रीभगवान के उपदेश में विरोधाभास देखा जा सकता है। एक ओर तो भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिये प्रेरित कर रहे हैं और यहाँ अहिंसा की बात कर रहे हैं। परंतु ऐसा नहीं है। यदि कोई आततायी निरपराध लोगों की हत्या कर रहा है। (आतंकवादी कसाब इसका उदाहरण है।) तो ऐसे आततायी को मारना या सजा दिलाना हिंसा नहीं है। हिंसा द्वारा यदि एक का अहित होता है और उस हिंसा से अनेकों का हित है तो उस हिंसा में भी अहिंसा है। यदि कोई न्यायाधीश दुष्ट को सजा सुनाए तो वह हिंसा भी अहिंसा है। दूसरों के धन, स्त्री आदि का अपहरण, हत्या का प्रयास आदि कार्य आततायी के ही लक्षण है। दुर्योधन, दुःशासन आततायी हैं। विवेक से निर्णय करना गीता सिखाती है। श्रीभगवान ने इन श्लोंको में 26 देवीय गुण-संपदाएँ वर्णित की हैं जो इस प्रकार हैः

1. **अभय -** अभय सबसे पहली दैवी संपदा है। अभय का तात्पर्य है - निर्भयता। यह निर्भयता हमारे भीतर कैसे आये? यदि हम सत्य मार्ग पर हैं तो हम निर्भय होते हैं। यदि हमारे भीतर आत्मविश्वास है तो हम निर्भय होते हैं। आत्मविश्वास के लिये शक्ति की साधना आवश्यक है। शरीर सशक्त हो, इसलिये व्यायाम करना चाहिये। शक्ति से आत्मविश्वास आता है इसलिये शक्ति का अर्जन करना निर्भयता देता है।

2. **सत्वशुद्धि -** शुद्धता होना चाहिये। जैसे केवल हेंडसैनेटाईजर से हाथ साफ करने मात्र से शुद्धि नहीं हो सकती; विशुद्ध जल से हाथ धोना भी आवश्यक है। सम्यक् शुद्धि इसके आगे की बात है। शरीर के साथ मन की पवित्रता सम्यक् शुद्धि है।

3. **ज्ञानयोग-व्यवस्थिति -** तत्त्वज्ञान के लिये ध्यानयोग में निरंतर दृढ़ स्थिति (परमात्मा के स्वरूप को तत्त्व से जानने के लिये सच्चिदानंदघन परमात्मा के स्वरूप में एकीभाव से ध्यान की निरंतर गाढ़ स्थिति का ही नाम 'ज्ञानयोगव्यवस्थिति' है) श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञान और विज्ञान दोनों का उपदेश देती है। विज्ञान बाह्य ज्ञान है जिसे प्रयोगशाला में देखा जा सकता है। विज्ञान की एक और विशेषता है कि यह परिवर्तनशील होता है। जबकि ज्ञान अनुभव का विषय है तथा ज्ञान अपरिवर्तनीय है, सनातन है। तभी तो अपनी रचना के सवा पाँच हजार वर्ष पश्चात आज भी गीता यथार्थ है। ज्ञान प्राप्ति के लिये योग किया जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता योगशास्त्र का विज्ञान है। पुष्पिका में आया **'योगशास्त्र'** शब्द इसका प्रमाण है। ज्ञान तक पहुँचने के लिये उस विज्ञान (योग) का आश्रय लिया जा सकता है। प्रतिदिन योग का अभ्यास करना- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान और धारणा द्वारा पंचेंद्रियों का नियमन करना चाहिये। हमारा जीवन अंतर्बाह्य व्यवस्थित होना चाहिये। शुद्ध आचरण व्यवस्थिति की पहली सीढ़ी है। इसी क्रम में शुद्ध लेखन और शुद्ध उच्चारण का अभ्यास भी हमारे जीवन को व्यवस्थित करने में सहायक है। इसलिये हमें शुद्धता का आग्रही बनना चाहिये।

4. **दान -** दान से तात्पर्य केवल धन का दान नहीं है। दान अनेक प्रकार के हैं- समयदान, अंगदान, ज्ञानदान, देहदान, श्रेयदान, विद्यादान, रक्तदान आदि। शुभकार्य के लिये अपना समय देना समय दान है। अहंकार से मुक्ति का साधन श्रेयदान है। कार्य स्वयं करना और उसका श्रेय अन्य को दे देना श्रेयदान है। हमें प्रतिदिन यह विचार करना चाहिये कि आज मैंने क्या दान किया? भगवान बुद्ध किसी महिला के घर भिक्षा के लिये गये। महिला ने दुखी भाव से कहा कि महात्मा मेरे पास आपको देने के लिये कुछ नहीं है। भगवान बुद्ध ने कहा कि माता यह मिट्टी ही मेरे कटोरे में डाल दो। महिला ने कहा कि भगवन् आपका कटोरा गंदा हो जाएगा। भगवान बुद्ध ने कहा कटोरा भले गंदा हो जाए परंतु तुम्हारे देने की वृत्ति की रक्षा तो हो जाएगी। इसलिये दान करते रहना चाहिये।

5. **दम -** स्वयं का दमन, अपने आप को रोकना। रसना (जीभ) पर नियंत्रण, आँखों का संयमन, कानो का संयमन।

6. **यज्ञ -** कई प्रकार के यज्ञ हैं- केवल घृत द्वारा अग्नि में आहुति ही यज्ञ नहीं है। सबके कल्याण के लिये जो क्रियात्मक दान है वह यज्ञ है।

7. **स्वाध्याय -** स्वयं के द्वारा किया गया अध्ययन।

8. **तप -** स्वयं को तपाना। अपनी क्षमताओं को थोड़ा खींचकर उन्हें बढ़ाना।

9. **आर्जव -** सरलता। जो भी बात करें बड़ी सीधी बात करें। अनुद्वेगकर वाक्य बोलना वाणी का तप है। उसी का दूसरा नाम आर्जव है।

10. **अहिंसा -** मन, वाणी और शरीर द्वारा किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना।

11. **सत्य -** यथार्थ और प्रिय भाषण।

12. **अक्रोध -** अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न होना।

13. **त्याग -** कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग।

14. **शांति -** अंत:करण की उपरति अर्थात चित्त की चंचलता का अभाव।

15 **अपैशुन -** किसी की भी पीठ पीछे बुराई नहीं करना। हमें प्रयासपूर्वक किसी की बुराई नहीं करना चाहिये।

16. **दया -** सभी प्राणियों के प्रति दया।

17. **अलोलुप्त्वं -** लोलुपता (आसक्ति) का न होना। इंद्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी उनमें आसक्ति का न होना।

18. **मार्दवं -** हमारे आचरण में जो सौम्यता (कोमलता) है उसे मार्दव कहते हैं। हमारे चलने में भी सौम्यता होनी चाहिये। माता शबरी कैसे चलती होंगी? हमारी आँखों से, हमारे शब्दों से, हमारे व्यवहार से सौम्यता (मार्दवता) प्रकट होना चाहिये।

19. **ह्री -** लज्जा। यह दैवीय गुण है।

20. **अचापल्य -** मन की अचंचलता। मन की स्थिरता। व्यर्थ की चेष्टाओं का अभाव।

21. **तेज -** श्रेष्ठ पुरुषों की उस शक्ति का नाम तेज है कि जिसके प्रभाव से उनके सामने विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्राय: अन्यायाचरण से रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं।
22. **क्षमा -** सहज क्षमा करना आना चाहिये। लोग बात पकड़कर रख लेते हैं। क्षमा नहीं करते।

23. **धृति -** धैर्य

24. **शौच -** बाहर भीतर की शुद्धि। सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहार से द्रव्य की और उसके अन्न से आहार की तथा यथायोग्य बर्ताव से आचरण की और जल मृत्तिकादि से शरीर की शुद्धि को बाहर की शुद्धि कहते हैं तथा राग, द्वेष और कपट आदि विकारों का नाश होकर अंत:करण का स्वच्छ हो जाना भीतर की शुद्धि कही जाती है।

25. **अद्रोह -** वैर का अभाव। किसी में भी शत्रु भाव का न होना।

26. **न अतिमानिता -** अहं का अभाव। अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव।

कितने सुंदर-सुंदर शब्दों का प्रयोग किया है। यह छब्बीस गुण-संपदा से युक्त जो सेना है वह धर्म की सेना है। इस सेना का सेनापति है 'अभय' जो सबसे पहले आया है। 'न अतिमानिता' सबसे बाद में आया है। तात्पर्य कि अहं पीछे से आकर प्रहार करता है। तब यदि निर्गर्विता है तो वह अहं से हमारी रक्षा करेगी। हमारे भीतर ही अधर्म की सेना भी है। जो आसुरी गुण संपदा है वही अधर्म की सेना है। ये सभी हमारे मन के भीतर ही हैं। अगले श्लोक में भगवान ने छह आसुरी गुण बताए हैं-

16.4

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोधः(फ्) पारुष्यमेव च।
अज्ञानं(ञ्) चाभिजातस्य, पार्थ सम्पदमासुरीम्।।16.4।।

हे पृथानन्दन ! दम्भ करना, घमण्ड करना और अभिमान करना, क्रोध करना तथा कठोरता रखना और अविवेक का होना भी - (ये सभी) आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचनः छह आसुरी गुण हैं- 1. दम्भ (ढकोसला, नाटक, दिखावा), 2. दर्प (घमण्ड), 3. अभिमान, 4. क्रोध, 5. पारुष्य (कठोरता) और 6. अज्ञान।

श्रीभगवान ने यह छह आसुरी संपदा बताई। देखा जाए तो देवीय संपदा के अंतर्गत 26 गुण संख्या की दृष्टि से अधिक हैं परंतु जिस प्रकार बहुत बड़ी नौका को डुबोने के लिये एक छोटा-सा सुराख ही काफी होता है वैसे ही सभी दैवी गुणों से युक्त उत्तम पुरुष में इन छह आसुरी संपदा में से एक भी दुर्गुण आ जाए तो उसका पतन निश्चित हो जाता है। ये संख्या में कम हैं परंतु महाभयंकर हैं। दैवी संपदा भवसागर से पार करती है तो आसुरी संपदा पतन की ओर ले जाती है। संत ज्ञानेश्वर महाराज ने ज्ञानेश्वरी में कहा है कि ये जो छह दोष हैं ये विपरीत बुद्धि देते हैं। रावण महान शिवभक्त, मातृभक्त था। अपनी माता को भगवान शिव के दर्शन कराने के लिये अभिमानवश उसने कैलाश पर्वत उठाने का दुस्साहस कर लिया। परिणामत: भागवान शिव ने उसका हाथ कैलाश के नीचे दबा दिया। उस विकट स्थिति में शब्द पुष्पों की जिस अद्‌भुत माला से रावण ने भगवान शिव को प्रसन्न किया उसे **शिवताण्डवस्तोत्र** कहा जात है। आशुतोष भगवान शिव प्रसन्न होकर उसे मुक्त कर देते हैं। ऐसा पण्डित रावण अपने अहंकारवश विनाश को प्राप्त हुआ। रावण अहंकार का प्रतीक है।

16.5

दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः(स्) सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातोऽसि पाण्डव।।16.5।।

दैवी सम्पत्ति मुक्ति के लिये (और) आसुरी सम्पत्ति बन्धन के लिये मानी गयी है। हे पाण्डव! (तुम) दैवी सम्पत्ति को प्राप्त हुए हो, (इसलिये तुम) शोक (चिन्ता) मत करो।

विवेचनः ये छब्बीस दैवी गुण मोक्षप्रद हैं, मुक्तिप्रद हैं। आसुरी संपदा बाँधने वाली है। श्रीभगवान कहते हैं, हे पाण्डव (अर्जुन)! तुम्हें शोक करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि तुम दैवी गुण-संपदा से युक्त हो।

16.6

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्, दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः(फ्) प्रोक्त , आसुरं(म्) पार्थ मे शृणु।।16.6।।

इस लोक में दो तरह के ही प्राणियों की सृष्टि है -- दैवी और आसुरी। दैवी को तो (मैंने) विस्तार से कह दिया, (अब) हे पार्थ! (तुम) मुझसे आसुरी को (विस्तार) से सुनो।

विवेचनः दो प्रकार के (दैवी और आसुरी) लोग पृथ्वी पर होते हैं। हम स्वयं का मूल्यांकन कर सकते हैं। दैवी गुण सात्विकता और आसुरी गुण तामसिकता को बताते हैं। दैवी गुण-संपदा का विस्तार से वर्णन हो चुका है। तेरहवें अध्याय में भी भगवान ने दैवी-गुण-संपदा का वर्णन किया है। परंतु जैसे कहते हैं-

वाद्य के बिना नाद नहीं
पुष्प के बिना मकरंद नहीं
घर्षण के बिना अग्नि प्रकट नहीं होती
वैसे ही मनुष्य शरीर दैव और आसुरी संपदा से युक्त है।

आगे भगवान आसुर स्वभाव का विस्तार से वर्णन कर रहे हैं-

16.7

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, जना न विदुरासुराः।
न शौचं(न्) नापि चाचारो, न सत्यं(न्) तेषु विद्यते।।16.7।।

आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य किस में प्रवृत होना चाहिये और किससे निवृत्त होना चाहिये (इसको) नहीं जानते और उनमें न तो बाह्य शुद्धि, न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य-पालन ही होता है।

विवेचनः पुण्य में प्रवृत्ति और पाप से निवृत्ति होना चाहिये। दैवी गुणों में प्रवृत्त होना और आसुरी गुणों से निवृत्त होना चाहिये। अंतिम आसुरी गुण अज्ञान है। जैसे रेशम के कीड़े गंदगी में ही मर जाते हैं उसी प्रकार की आसुरी प्रवृत्ति है - अशुचिता। बाहर और भीतर से शुद्धता का प्रयास करना चाहिये। शरीर की शुद्धि के साथ पेट साफ रखने का प्रयास करना चाहिये। पेट साफ न हो तो त्रिफला आदि के द्वारा पेट साफ रखना चाहिये। मन की पवित्रता शुचिता है। आसुरी लोग मन और शरीर के भी मैले होते हैं। आहार-विहार की शुचिता सोने और जागने की नियमबद्धता उनमें नहीं होती। वे सदाचारहीन होते हैं, स्वच्छन्द होते हैं। जैसे बकरी स्वच्छन्द होकर दिनभर खाती रहती है; वैसे ही ये लोग होते हैं; हवा के बहाव की तरह बहते हैं। असत्य ही उनके जीवन का आधार होता है। ये सारी गंदी आदतें उनमें रहती है। ऊपर से स्वीकार भी नहीं करते।

16.8

असत्यमप्रतिष्ठं(न्) ते, जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं(ङ्), किमन्यत्कामहैतुकम्।।16.8।।

वे कहा करते हैं कि संसार असत्य, बिना मर्यादा के (और) बिना ईश्वर के अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से पैदा हुआ है। (इसलिये) काम ही इसका कारण है, इसके सिवाय और क्या कारण है? (और कोई कारण हो ही नहीं सकता।)

विवेचनः उनकी तर्क मीमांसा असत्य पर आधारित होती है। वे बड़े आराम से असत्य का आश्रय लेते हैं। वे मानते हैं कि जगत को ईश्वर ने नहीं बनाया। केवल काम-भोग से संसार का निर्माण हुआ है। चार्वाक के सिद्धांत '**ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्**' को ये मानते हैं। ये कोई मुहूर्त नहीं मानते, उपभोगवादी होते हैं। ये दुर्बुद्धि और मद्यप होते हैं। पाप-पुण्य सब-कुछ झूठ मानते हैं; लोकविरोधी होते हैं।

16.9

एतां(न्) दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः, क्षयाय जगतोऽहिताः।।16.9।।

इस (पूर्वोक्त) (नास्तिक) दृष्टि का आश्रय लेने वाले जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, जिनकी बुद्धि तुच्छ है, जो उग्र

कर्म करने वाले (और) संसार के शत्रु हैं, उन मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत का नाश करने के लिये ही होता है।

विवेचनः इस प्रकार झूठ का आश्रय लेकर वे स्वयं का और अपने साथियों का भी नाश कर देते हैं।

16.10

काममाश्रित्य दुष्पूरं(न्), दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्, प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।16.10।।

कभी पूरी न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर दम्भ, अभिमान और मद में चूर रहने वाले (तथा) अपवित्र व्रत धारण करने वाले मनुष्य मोह के कारण दुराग्रहों को धारण करके (संसार में) विचरते रहते हैं।

विवेचनः ऐसे आसुरी प्रवृत्ति के लोग अपने झूठे सिद्धांतों का आश्रय लेते है। वही उनको सच लगता है। अपनी कामनाओं को पूर्ण करना ही उनका ध्येय है। स्वत: भ्रष्ट आचरण में लगे रहते हैं। स्वयं पर उनका कोई नियमन, संयम नही होता।

16.11

चिन्तामपरिमेयां(ञ्) च, प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिताः।।16.11।।

(वे) मृत्यु पर्यन्त रहने वाली अपार चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह और उनका भोग करने में ही लगे रहने वाले और 'जो कुछ है, वह इतना ही है' - ऐसा निश्चय करने वाले होते हैं।

विवेचनः कामभोग ही उनके जीवन का परम सत्य है। वे बड़े तर्कपूर्ण ढंग से अपनी बात कहते हैं। ये आशा और धन के पीछे लगे रहते हैं।

16.12

आशापाशशतैर्बद्धाः(ख्), कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थम्, अन्यायेनार्थसञ्चयान्।।16.12।।

(वे) आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन-संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं।

विवेचनः ये कई प्रकार की आशाओं से बँधे रहते हैं। काम और क्रोध परायण रहते हैं। धन-संचय में लगे ये लोग आसुरी संपदा के चलते-फिरते उदाहरण हैं। ऐसे दुराचारियों से बचना चाहिये।
आगे श्रीभगवान ने और भी बहुत सुंदर बाते कही हैं जो अगले विवेचन में लेंगे।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्त्ता ः हेमलताजी

प्रश्न ः हमें गीता जी का पाठ भगवान के सामने बैठकर ही करना चाहिये?

उत्तर ः श्रीमद्भगवद्गीता श्रीभगवान का वाङ्मय विग्रह है। भगवान की मूर्ति है। श्रीमद्भगवद्गीता को अशौच का स्पर्श नहीं होता। इसलिये कहीं भी गीता-पाठ कर सकते हैं।

प्रश्नकर्त्ता ः विनीता जी

प्रश्न ः भगवान ने अर्जुन को युद्ध करने को क्यों कहा?

उत्तर ः श्रीभगवान अत्यंत क्षमाशील हैं। शिशुपाल के सौ अपराध भगवान ने क्षमा किये। महाभारत का युद्ध रोकने का भी भगवान ने प्रयास किया। परंतु जब शांति के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं तो युद्ध का कोई विकल्प नहीं होता। क्षत्रियत्व अच्छे लोगों की रक्षा के लिये अनिवार्य है। दुर्जनों को दण्ड देने के लिये अच्छे लोगों के हाथ में हथियार होना चाहिये। यही श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षा है। सीमापार से आने वाले आतंकियों को मारना सेना का कर्तव्य है। यही धर्म है। इसलिये हमारे बच्चों द्वारा शक्ति की आराधना करवाएँ। माता जीजाबाई ने छत्रपति शिवाजी महाराज में वह क्षत्रियत्व जाग्रत किया। भूषण ने लिखा है कि शिवाजी नहीं होते तो सभी की सुन्नत होती।

प्रश्नकर्त्ता ः वैष्णवी पाटिल जी

प्रश्नः मांसाहार और शाकाहार में क्या श्रेष्ठ है?

उत्तर ः मांसाहार आवश्यक नहीं है। मनुष्य शरीर के लिये आवश्यक पौषक तत्त्व शाकाहार में ही प्राप्त होते हैं। भोजन का प्रभाव हमारे मन और वाणी पर भी पड़ता ही है। **जैसा खाएँ अन्न वैसा बने मन और जैसा पानी वैसी वाणी।** लेकिन यदि मांसाहार किसी के घर की परंपरा है तो उससे घृणा भी न करें। परंतु शाकाहार ही हमारा स्वाभाविक आहार है। हमारे पेट, आँत, मुँह और दाँतों की रचना शाकाहारी प्राणियों जैसी है। शाकाहार मानव का वैज्ञानिक आहार है।

प्रश्नकर्ता ः अचला जी

प्रश्न ः 'पारुष्य' शब्द का अर्थ और श्लोक संख्या 9 की व्याख्या?

उत्तर ः पुरुष स्वाभाविक कठोर होता है। पारुष्य अर्थात् कठोर।

श्लोक संख्या 9 इस प्रकार हैः

एतां(न्) दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः, क्षयाय जगतोऽहिताः।।16.9।।

अर्थात् जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, जिनकी बुद्धि अल्प है। वे उग्र कर्म करने वाले संसार के शत्रु हैं। ऐसे मनुष्यों के सामर्थ्य का प्रयोग जगत के नाश के लिये ही होता है।

प्रश्नकर्त्ता ः ज्ञानशक्ति जी

प्रश्न ः एकादशी के दिन संपूर्ण गीता का पाठ करने के क्या लाभ है?

उत्तर ः दैनिक नहीं तो कभी पंद्रह दिन में एक बार पूरी गीता पाठ करने से क्या लाभ ही होगा। भगवद्गीता छंदबद्ध है। इसके लययुक्त पाठ से हमारे स्वासोच्छवास का लय बँध जाता है। इससे हमारे भीतर प्राणशक्ति का संचार होता है। स्वत: ही प्राणायाम की क्रिया होने से शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है जिससे हमारे शरीर के रोग दूर होते हैं। इसके अलावा कई अलौकिक लाभ भी हैं। जैसे '**मूकं करोति वाचालं**' कई लोगों के वाणी दोष गीता-पाठ से दूर हुए हैं। संस्कृत श्लोक का लयबद्ध पाठ शरीर के सेल्स को सक्रिय करता है। भगवद्गीता योगशास्त्र है। तिथि विशेष का भी महत्त्व है। जैसे हमें तेरह सूर्य नमस्कार रोज करना चाहिये परंतु सप्तमी के दिन अधिक से अधिक सूर्य नमस्कार करना चाहिये।

सुंदर प्रार्थना के साथ आज के सत्र का समापन हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||